• कविताएं..

ले चल वहां भुलावा देकर...

ले चल वहां भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो-
तज कोलाहल की अवनी रे।
जहां सांझ-सी जीवन-छाया,
ढीली अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो-
ताराओं की पांति घनी रे।
जिस गम्भीर मधुर छाया में,
विश्व चित्र-पट चल माया में,
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई-
दुख-सुख बाली सत्य बनी रे।
श्रम-विश्राम क्षितिज-वेला से
जहां सृजन करते मेला से,
अमर जागरण उषा नयन से-
बिखराती हो ज्योति घनी रे !

-जयशंकर प्रसाद

बस!

सपने
टूट ही जाते हैं
पलकों की
महीन परछती पर
अपनी जगह नहीं बना पाते
असल में
कई सपने बहुत बड़े होते हैं
वज़नी भी
वो गिर जाते हैं
और
टूट जाते हैं
उनके गिरने से
जो गड्ढा बनता है
वो कभी नहीं भरता।

-प्रदीप सिंह

• कहानी/-राजिन्दर सिंह बेदी

तुलादान...

गतांक से आगे....

उमदां को पूरियां मिल गई थीं। वो जज्मानी को सलाम कर रही थी। बाबू ने सोचा था कि शायद मुस्कुराता हुआ सुखी नंदन उसकी खामोशी में उसके मन की बात पालेगा। मगर सुख नंदन को आज बाबू का ख्याल कहां आता था। आज हर छोटे बड़े को सुखी की जरूरत थी। लेकिन सुखी को किसी की जरूरत न थी। अपनी अजमत और बाबू के सादा और बोसीदा, टाट के से कपड़ों को देख कर वो शायद उस से नफरत करने लगा था। अपनी अदीम अलफरसती का इजहार करते हुए उसने गोया बाबू की रही सही रऊनत को मिट्टी में मिला दिया। फिर बाबू की मां की आवाज आई।

बाबू... तेरा सत्यानास, तूं (ताऊन) मारे... घुस जाए तेरे पेट में माता काली... आता क्यूं नहीं। दो सौ कपड़े पड़े हैं... लंबर-गीर ने दाले। मैं तो रो रही हूं तेरी जान को...

बाबू को ये महसूस हुआ कि न सिर्फ सुख नंदन ने उस के जज्बात को ठेस लगाई है और वो उस के साथ कभी नहीं खेलेगा, बल्कि उस की मां, जिसके पेट से वो नाहक पैदा हुआ था, वही औरत जिस से उसे दुनिया में सब से ज्यादा प्यार की तवक्को है, वो उस से ऐसा सुलूक करती है। काश! मैं इस दुनिया में पैदा ही न होता। अगर होता तो यूं बाबू न होता। मेरी मिट्टी यूं खराब न होती। आखिर में सुखी से शक्ल और अक्ल में बढ़ चढ़ कर नहीं?

सुख नंदन के जन्म-दिन को एक महीना हो गया। तुलादान को आई हुई गंदुम पिसी। पिस कर उस की रोटी बनी। बाबू के मां बाप ने खाई। मगर बाबू ने वो रोटी खाने से इनकार कर दिया। जितनी देर तुलादान का आटा घर में रहा, वो रोटी अपने चचा के हां खाता रहा। वो नहीं चाहता था कि जिस तरह मांगे तांगे की चीजें खा खा कर उस के मां बाप की जहनियत गुलामाना हो गई है, वो रोटी खा कर उस में भी वो बात आ जाए। गाढ़े पसीने की कमाई हुई रोटी से तो दूध टपकता है। मगर हराम की कमाई से खून... और गुलामी खून बन कर उस के रग-ओ-रेशे में समा जाए, ये कभी न होगा। साधू राम हैरान था। बाबू की मां हैरान थी। चचा जिस पर उस की रोटी का बोझ जबरन पड़ गया था, हैरान थे। चची नाक भौं चढ़ाती थी, और जब घर में उस अनोखे बाईकॉट का चर्चा होता तो साधूराम यकदम कपड़ों पर लम्बरगीर ने छोड़ देता और दर्द दर्द दांत निकालते हुए कहता।

की की... बाबू है न।

सुख नंदन ने अब बाबू में एक नुमायां तब्दीली देखी। बाबू जिसका काम से जी उचाट रहता था, अब दिन-भर घाट पर अपने बाप का हाथ बटाता। बाबू अब उस के साथ नहीं खेलता था। हरिया के तालाब के किनारे एक बड़ी सी क्रोटन चप्पल पर वो और इस के दो एक साथी स्कूल के वक्त के बाद कान पता खेला करते थे। अब वो जगह बिलकुल सूनी पड़ी रहती थी। करीब बैठे हुए एक साधू जिनकी कुटिया में बच्चे अपने बस्ते रख देते थे। कभी कभी चरस का एक लंबा कश लगाते हुए पूछ लेते। बेटा! अब क्यूं नहीं आते खेलने को। और सुखी नंदन कहता। बाबू नाराज हो गया है बावा... फिर महात्मा जी हंसते और चरस का एक दम उलटा देने वाला कश लगाते और खांसते हुए कहते।

ऊहों... हूं... वाह-रे पट्ठे... आखिर बाबू जो हुआ तो!

इस वक्त सुखी नंदन जरूर से कहता अकड़ता है बाबू तो अकड़ा करे... उसकी औकात किया है। धोबी के बच्चे की?

...मगर बच्चों को अपने साथ खेलने के लिए कोई न कोई चाहिए। खेल में किसी तरह की जात पात और दर्जा की तमीज नहीं रहती। हकीकत में चंद ही साल की तो बात थी, जब कि वो यकसां नंगे पैदा हुए थे और उस वक्त तक उन में नादार, लख-पती, महा ब्राह्मण, भनोट, हरीजन... और इस किस्म की बातों के मुतअल्लिक ख्याल आराई करने की सलाहियत पैदा नहीं हुई थी।

सुख नंदन अपनी तमाम मस्नूई अस्मत को केंचुली की तरह उतार फेंक बाबू के हां गया। बाबू उस वक्त दिन-भर काम कर के थक कर सो रहा था। मां ने झिंजोड़ कर जगाया। उठ बेटा!... अब खेलने कभी न जाओगे क्या? सुखी आया है। बाबू आंखें मलता हुआ उठा। चारपाई के नीचे उस ने बहुत से मैले कुचैले और उजले उजले कपड़े देखे। कपड़े जो कि पैदाइश ही से एक सुखी नंदन और बाबू में इम्तियाज पैदा कर देते हैं... बाबू चारपाई पर से फर्श पर बिखरे हुए कपड़ों पर कूद पड़ा। दिल में एक लतीज गुदगुदी सी पैदा हुई। कई दिनों से वो खेला नहीं था और अब शायद अपनी इक्तिसाबी रऊनत पर पछता रहा था। बाबू का जी चाहता था कि फलांग कर बरामदे से बाहर चला जाए और सुखी से बगलगीर... और क्या इन्सान की इन्सान के लिए मोहब्बत कपड़ों की हद से नहीं बढ़ जाती? क्या सुखी केंचुली नहीं उतार आया था? बाबू चाहता था कि दोनों भाई रहे सहे कपड़े उतार कर एक से हो जाएं और खूब खेलें, खूब... बरामदे में कबूतरों के काबुक के पीछे जाली के दर्मियान में से बाबू की नजर सुखी पर पड़ी, जो पुर-उम्मीद नजरें उस के घर के दरवाजे पर गाड़े खड़ा था। यकायक बाबू को सुखी के जन्म-दिन की बात याद आ गई। वो दिल मसूस कर रह गया। कबूतरों की जाली में उसे बहुत सी बैटें नजर आ रही थीं और बहुत से सिराज, लुका और देसी किस्म के कबूतर घूं घूं करते हुए अपनी गर्दनों को फुला रहे थे। एक नर फूल फूल कर माद्दा को अपनी तरफ माइल कर रहा था। बाबू ने भी अपनी गर्दन को फुलाया और घूं घूं की सी आवाज पैदा करता हुआ चारपाई पर वापस जा लेटा। फिर उसे खयाल आया। सुखी धूप में खड़ा जल रहा है। मगर फिर वो एक फैसला-कुन लायहा-ए-अमल मुरत्तब करते हुए चारपाई पर आंखें बंद कर के लेट गया। आखिर वो भी तो कितना ही अरसा उस के घर के सेहन में बरसात की चिलचिलाती-धूप में खड़ा रहा था और उस ने इस की कोई पर्वा न की थी... अमीर होगा तो अपने घर में।

उसे कह दो... वो नहीं आएगा मां... कहो उसे फुर्सत नहीं है फुर्सत बाबू ने कहा।

श्रम तो नहीं आती है। मां ने कहा। इतने बड़े सेठों का लड़का आवे तुझे बुलाने के लिए और तो यूं पड़ रहे... गधा!

बाबू ने कोहनियां हिलाते हुए कहा। मैं नहीं जाने का, मां।

मां ने बुरा भला कहा। तो बाबू बोला। सच सच कह दूं मां। मैं जानता हूं, मेरी किसी को भी जरूरत नहीं.... वावेला करोगी, तो मैं कहीं चला जाऊंगा।

मां का मुंह खुला का खुला रह गया। उस वक्त नन्ही बुलंद आवाज से रोने लगी और मां उसे दूध पिलाने में मश्गूल हो गई।

-जारी

-गजानन माधव मुक्तिबोध

...मगर बच्चों को अपने साथ खेलने के लिए कोई न कोई चाहिए। खेल में किसी तरह की जात पात और दर्जा की तमीज नहीं रहती।

हकीकत में चंद ही साल की तो बात थी, जब कि वो यकसां नंगे पैदा हुए थे और उस वक्त तक उन में नादार, लख–पती, महा ब्राह्मण, भनोट, हरीजन... और इस किस्म की बातों के मुतअल्लिक ख्याल आराई करने की सलाहियत पैदा नहीं हुई थी...

• शायरी...

न अपने ज़ब्त को रुस्वा करो सता के मुझे
ख़ुदा के वास्ते देखो न मुस्कुरा के मुझे
सिवाए दाग़ मिला क्या चमन में आ के मुझे
क़फ़स नसीब हुआ आशियां बना के मुझे

◆◆◆

अदब है मैं जो झुकाए हुए हूं आंख अपनी
ग़ज़ब है तुम जो न देखो नज़र उठा के मुझे
इलाही कुछ तो हो आसान नज़-अ की मुश्किल
दम-ए-अख़ीर तो तस्कीन दे वो आ के मुझे

◆◆◆

ख़ुदा की शान है मैं जिन को दोस्त रखता था
वो देखते भी नहीं अब नज़र उठा के मुझे
मिरी क़सम है तुम्हें रहरवान-ए-मुल्क-ए-अदम
ख़ुदा के वास्ते तुम भूलना न जा के मुझे

◆◆◆

हमारा कौन ठिकाना है हम तो बिस्मिल हैं
न अपने आप को रुस्वा करो सता के मुझे

-बिस्मिल अज़ीमाबादी

• लाज़िम है कि हर बात में...

लाज़िम है कि हर बात में हो रंग–ए–असर भी
कि परदा–ए–जुलमत में है तनवीर–ए–सहर भी
देता है जहां दाद मेरे इस अज़म–ए–जवां की
कि इस आबला पाई में हूं सरगरम–ए–सफ़र भी
हम हैं कि हैं नाकाम–ए–तमन्नां सरे–महफ़िल
दामन में मगर आपके गुल भी हैं समर भी
हर जाम बहुत ख़ूब है कुछ और सिवा हो
ऐ काश जो शामिल हो तेरी मसत–ए–नज़र भी
दिल का भी बुरा हाल है इस इश्क के हाथों
तसलीम कि रोते हैं मेरे दीदा–ए–तर भी।

–कृष्ण बेताब